नौटंकी कला

सिद्धेश्वर अवस्थी

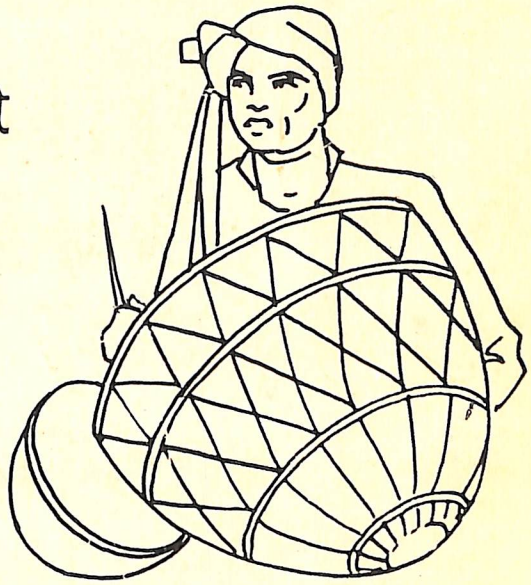

सांस्कृतिक कार्य विभाग, उ० प्र० का प्रकाशन

संस्कृति विभाग उ०प्र०
उपहार स्वरूप भेंट

नौटंकी कला पर मेरी अपनी दृष्टि

संक्षिप्त सार की दृष्टि से नौटंकी कला के विस्तृत रूप की नियत पृष्ठ संख्या के दायरे में अंकित करना पहले तो कुछ कठिन जान पड़ा क्योंकि इस विधा से जुड़े अनेक ऐसे पक्ष हैं जिनका अपना-अपना अलग अस्तित्व और महत्त्व है। फिर भी इस पुस्तिका के लघु आकार में हमारे पाठकों को काफी कुछ ऐसी जानकारियाँ मिलेंगी जिनके द्वारा उनकी भावी चिन्तनधारा को पर्याप्त बल मिलेगा। इस कामना के साथ नौटंकी कला की यह पुस्तक आपके हाथों में है।

सिद्धेश्वर अवस्थी

संस्कृति विभाग, उ०प्र०
उपहार स्वरूप भेंट

© सर्वाधिकार सुरक्षित – सांस्कृतिक कार्य विभाग, उत्तर प्रदेश

प्रथम संस्करण : मार्च, 1994

सचिव एवं निदेशक, सांस्कृतिक कार्य विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकाशित एवं अनुराधा गोयल, उप निदेशक (प्रकाशन) द्वारा सम्पादित
प्रकाशन सहयोग – अजय कुमार अग्रवाल, सहायक निदेशक (प्रकाशन) तथा प्रकाश पैकेजर्स, 257–गोलागंज, लखनऊ द्वारा मुद्रित।

नौटंकी कला

लोक–संवेदनशीलता जब अपनी रचनात्मक प्रक्रिया से जुड़ती है तब उसके विविध रूप अपने आप सामने आ जाते हैं। लोक की कोई भी रंग–प्रस्तुति हो या कलाकृति सुदूर अतीत में, उसके बीजाक्षर को 'रासक' नाम से जाना गया। आगे चल कर लोक–कलाओं के विविध रूप इसी बीजाक्षर के भेदों और उपभेदों के सार्थक परिणाम बने। रसों का प्रवाह कालजयी है, अबाध है, इसीलिये इसकी सतरंगी छवि विश्व–चेतना की शाश्वत आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी। नौटंकी इसी वृहत धारा की एक मोहक कड़ी है।

हाथरसी और कानपुरी नौटंकी

सुरावट, स्वर पर ठहराव तथा सम्पूर्ण कथानक के अनुरूप चयनित रागों के स्पर्श और बारीकियों से सजा पात्र जब अपनी भूमिका को सम्पादित करता है तब हाथरसी नौटंकी–शैली की सहजता से पहचान हो जाती है। चौथे काले के अगले सप्तक तक इस शैली के हामी कलाकार पुरअसर अन्दाज़ में अपनी–अपनी भूमिका को प्रस्तुत करते हैं।

हर कथानक की अपनी–अपनी रसाभिव्यक्ति होती है। कानपुर शैली की नौटंकी का कलाकार अपनी भूमिका का नाटकीय तेवर से निर्वाह करता है। पारसी नाटकों का सम्पूर्ण रंगविधान कानपुरी नौटंकी की अपनी जान है क्योंकि इसका जन्म पारसी नाटकों की आंक–बांक से हुआ है। हाथरसी नौटंकी की गायन–शैली पर ध्रुपद की स्थिर गायकी का प्रभाव है, इसीलिये कानपुर के मान्य कलाकारों ने इनकी गायकी को 'ठरहाव की गायकी' की संज्ञा दी।

हाथरसी नौटंकी का गायक किसी कथ्य के प्रथम अथवा मध्य के वर्ण अथवा व्यंजन पर पहले दो तीन मिनट का टिकाव लेकर तब शब्द के शेष वर्णों को उजागर करता है। बृजवासी नौटंकी के रसिये, गायक के इस लम्बे टिकाव की मुक्त कंठ से सराहना करते हैं। सुर पर लम्बी अवधि का ठहराव, गायक की लम्बे समय की कठिन साधना का परिणाम माना जाता है किन्तु नाटकीयता की दृष्टि से, सुर पर लम्बे समय का ठहराव कभी–कभी हास्यास्पद स्थिति उत्पन्न कर देता है। मान लीजिये, हाथरसी स्वांग या नौटंकी में किसी हरकारे को यह सूचना देनी है कि, फलां गाँव, घर अथवा खलिहान में आग लग चुकी है। ऐसी स्थिति में वह स्वर साधक हरकारा 'आग' के पहले वर्ण 'आ' पर पहले सुर का लम्बा टिकाव लेगा, इसके बाद 'ग' का उच्चारण करेगा। अब आप स्वयं विचार करें कि सुर के इस लम्बे टिकाव की अवधि में गाँव, घर या खलिहान का कितना हिस्सा प्रचंड अग्नि में खाक हो चुकेगा। कानपुरी नौटंकी शैली में ऐसे स्वर–व्यामोह को इसीलिए कोई महत्व नहीं दिया गया।

कानपुर शैली के नौटंकी गायन में, अनुपातिक रूप से शुद्ध राग और स्वर का महत्व है। सेहत अल्फाजी (उच्चारण की शुद्धता), कथ्य की वज़नदारी, जवाब सवाल में आंक–बांक की तेज़ तर्रारी, भावाभिनय के साथ हर भूमिका की बेबाक अदायगी, इस शैली की अपनी खूबियाँ हैं। रुपांकन, वेश–विन्यास, पारसी रंगमंच का दृश्यविधान तथा पात्रों का अभिनयात्मक छन्द गायन किसी भी कथानक को सजीव रूप में प्रस्तुत करने की दक्षता रखता है।

नौटंकी क्षेत्र में दोनों शैलियों की कुशल नौटंकी गायिका स्व० कृष्णाबाई, विविध शैली के अनुपम नौटंकी गायक स्व० सुहेल बाबा, सिद्ध नक्कारा–वादक मरहूम उस्ताद रशीद खां वारसी एवं बेजोड़ नौटंकी की गायिका पद्मश्री गुलाब बाई ने हाथरसी नौटंकी–गायन को 'ठहराव की गायकी' तथा कानपुरी नौटंकी गायन को 'रंग की गायिकी' की संज्ञा प्रदान की है क्योंकि कानपुरी नौटंकी की धुनें अथवा बन्दिशें हाथरसी नौटंकी से भिन्न हैं। उसका हर कथ्य–गायन, कथानक के अनुरूप तेवर और लहज़ेदारी की नाटकीयता में रचा–बसा होता है। हाथरसी नौटंकी के विशेषज्ञों का मानना है कि इस शैली के नौटंकी–गायन के लिये बड़ी पाक–साफ आवाज़ होनी चाहिये। इसके लिये नये शिष्य को अपने गुरु के पास संयमित होकर बड़ी कठिन साधना करनी होती है।

कानपुरी नौटंकी के रसिक और कलाकार हाथरसी सुरीलेपन की हृदय से सराहना करते हुए भी उनके 'ठहराव की गायकी' को अपनी गायन–शैली में आत्मसात नहीं कर पाये।

नौटंकी–क्षेत्र में अनेक कथानकों को लेकर, आलेखों की रचना हुई जिनकी प्रभावी प्रस्तुति के लिये रसानुरूप छन्दों का विधान किया गया। कथानक की रसात्मकता के अनुरूप, छन्द जाने–पहचाने होते हुए भी अनुपातिक आवश्यकता के अनुसार प्रत्येक नौटंकी में उनका रचना विधान एक दूसरे से भिन्न होता है। कोई दोहा, चौबाला और बहरतबील प्रधान, किसी में लावनी का प्रचुरता से प्रयोग तथा किसी में कव्वाली, शेर और ग़ज़ल का अधिक प्रयोग किया गया है। रसात्मक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए भैरव, भैरवी, जोगिया, कालिंगड़ा, सिन्ध भैरवी, देश, मांड, सोहनी, यमन जैसे किसी भी राग का आश्रय लेकर कथानक के रस का परिपाक किया जाता है। यह पद्धति दोनों शैलियों के नौटंकी–गायन में समान रूप से जुड़ी है फिर भी दोनों की शैली में अन्तर है।

कथा की रसात्मक अभिव्यक्ति से दर्शक समुदाय सहजता और शीघ्रता से जुड़ जाता है यह कानपुर शैली की सर्वमान्य विशेषता है।

नक्कारा–संगत तथा पूर्व रंग की प्रक्रियायें : हाथरसी तथा कानपुरी नौटंकी में मोटे तौर से यह देखा जाता है कि हाथरस में कथ्य गायन पूरा करने के बाद नक्कारे पर लयकारी का ठेका बजता है, जबकि कानपुरी नौटंकी में हर पात्र के गायन के साथ नक्कारे की लयकारी चलती रहती है। जहाँ तक समानता की बात है, उसे आरम्भ में अनुभव किया जा सकता है। जैसे दोनों मंचों पर पात्रों के प्रवेश से पहले नक्कारे पर 'रेला' बजाकर नौटंकी प्रस्तुति का वातावरण बनाया जाता है, तत्पश्चात् पथवारी, भेंट अथवा ईश वन्दना को समवेत स्वरों में सभी पात्र एक

साथ गाते हैं। नौटंकी की भाषा में इसे कोरस कहा जाता है। यह 'पूर्व रंग' की प्रक्रिया है, जिसे समान रूप से दोनों शैलियों में स्वीकार किया गया है।

इसके बाद रंगा या कवि दर्शक समुदाय को दोहा, चौबोला और दौड़ छन्द गाकर नौटंकी की संक्षिप्त कथा और नाम से परिचित कराता हुआ उसके लेखक का नाम बताता है। इस नियम का पालन नौटंकी की दोनों शैलियों के कलाकार समान रूप से करते हैं।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

१६वीं शताब्दी का समय हिन्दुओं और मुसलमानों की मेल-मिलाप की पनपी संस्कृति का समय था। अकबर के शासन-काल में ऐसे गौरवमय क्षणों को ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में भोगा गया। औरंगज़ेब के शासन-काल में यह संस्कृति पूरी तरह से ध्वस्त हो गई थी।

उत्तर भारत में मराठों के प्रवेश के साथ ही चंग के ठेके गूंजने लगे थे जिस पर ख्याल, लावनी, बहरतबील, शकिस्ता जैसे अनेक छन्दों ने हिन्दू-मुस्लिम समुदाय के बीच ध्वस्त होती मेल-मिलाप की संस्कृति को अद्‌भुत रूप से स्थिरता प्रदान करने की भूमिका निभायी।

ख्याली छन्दों ने राष्ट्रीय एकता को दृढ़ता प्रदान करने के साथ ही हिन्दी की खड़ी बोली के निखरे रूप को भी स्थापित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

हिन्दी, उर्दू, फारसी, संस्कृत को समान भाव से आदर देकर, छन्द के हर चरण में उनका खुलकर प्रयोग हुआ।

बड़ा ख्याल, छोटी बहर का ख्याल, लावनी, लंगड़ी लावनी, बहरतबील, सखी दौड़, कव्वाली, रेखता, शेर तथा अन्य छन्दों की रंगते देश के अधिकांश भागों में सुनायी देने लगीं। ख्यालियों में धर्म, जाति या समुदाय का भेद नहीं रहा। हर प्रान्त में ख्यालियों के अखाड़े स्थापित हुए। महात्मा तुकनगिरि तथा सूफी फक़ीर शाह अली क्रमशः तुर्रा और कलगी दल के नायक बने। तुर्रावादी शिव को सर्वोपरि मानते थे तथा कलगीवादी शक्ति को। १८वीं सदी से १९वीं सदी के पूर्वार्ध तक चंगों के ठेके गूंजते रहे। कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के अनेक भागों में ख्याल के अखाड़े स्थापित हुए जिनके दंगलों को सुनने के लिये हजारों की संख्या में लोग जमा होते थे।

नौटंकी : (ख्याली छन्द-विधान में रची-बसी मोहक संगीत नाट्य धारा-)

ख्याल-विधा में जिन छन्दों का उल्लेख किया जा चुका है- नौटंकी की रचना करते समय उन्हीं को व्यवहार में लाया गया। अन्तर दिखा तो सिर्फ इतना कि जिन्हें हम चंग के ठेके पर सुना करते थे वे सब नक्कारे की लयकारी में ढल गये। शास्त्रीय संगीतज्ञों ने कथानक के अनुरूप उनमें विविध राग-रागनियों के प्रभावी रंग भरे। लयकारियों के चलन से कथानक के कागज़ी पात्र, जीवंत रूप में दर्शकों की आंखों में तैरने लगे।

लोक संगीत नाट्यों की वृहत धारा के आदि भगीरथ ख्याली अखाड़ों के ख़लीफा लोग ही थे। महाराष्ट्र में 'तमाशा', गुजरात में 'भवई', राजस्थान में 'राजस्थानी ख्यालों' (खेलों) की लम्बी श्रृखंला, मध्यप्रदेश का 'माच' तथा उत्तर प्रदेश की 'नौटंकी' इन सबकी संस्थापना इन्हीं के द्वारा हुई थी। इनके संगीतमय रूप को निखारने का श्रेय स्थानीय संगीतज्ञों और वादकों को है जिनकी अपनी धुनों ने प्रत्येक लोक संगीत नाटक को पुख्ता आधार प्रदान किया। आर्थिक संरक्षण से इनके अनेक दलों की स्थापना हुई। फलतः अनेक कलाकार उत्पन्न होकर, मंच के माध्यम से सामने आ गये।

शैलियों की विविधता का कारण जानने के लिये राजस्थानी ख्यालों की श्रृंखला को स्मरण करना ही पर्याप्त होगा। मारवाड़ी, कुचामणि, शेखावटी, अलीबक्षी, जयपुरी, नौटंकी तथा कलगी तुर्रा की प्रस्तुतियों का अपना अपना ढंग होता है। क्षेत्रीय लोक नृत्यों और धुनों की विविधता के कारण ही इनके खेलों में नयेपन का अहसास होता है, हालांकि इनके चुने कथानकों में समानता है। वीर तेजा जी का आख्यान प्रत्येक शैली के लोक मंच पर बड़ी श्रद्धा और उत्साह से प्रस्तुत किया जाता है। वीर पुरुषों की गाथायें, प्रेमाख्यान, जादुई करिश्मों से भरपूर साहसिक कथायें, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा पौराणिक कथायें ही नौटंकी-प्रस्तुति का आधार बनी। स्वाधीनता संग्राम के दौर में 'खूने नाहक' जैसी राष्ट्रीय नौटंकियां भी लिखी गयीं। छन्दों के अनुपातिक प्रयोग से किसी भी कथानक के लयात्मक रूप की स्थापना होती है। यों तो हर छन्द नियम से कई चरणों में पूरा होता है लेकिन नौटंकी रचना में कभी किसी किसी छन्द की दो-दो पंक्तियों का ही प्रयोग करने के बाद अगला छन्द जुड़ जाता है। कभी कव्वाली जैसे छन्द की एक-एक पंक्ति पात्रों का सवाल जवाब बन जाती है। अतः कथानक के लयात्मक स्वरूप को स्थापित करते समय काव्य के अपने नियम कभी-कभी शिथिल हो जाते हैं।

क्षेत्रीय धुनों तथा नृत्यों के कम अथवा ज्यादा मिश्रण से मंच की प्रस्तुतियों में अन्तर देखा जाता है। राजस्थानी ख्यालों में यही अन्तर शैलीगत अन्तर के रूप में जाना पहचाना जाता है। उत्तर प्रदेश की हाथरसी नौटंकी में पहले दोहा, दुबोला, कड़ा, झूलना, शार्दूल विकीड़ित, हरि गीतिका, छन्द, सवैया, शकिस्ता, जिले की ठुमरी, रेखता, रसिया, कव्वाली, दादरा, दौड़, मांड, आल्हा, लावनी, थियेटर, लंगड़ी लावनी, गाना तथा शेर का प्रयोग किया जाता था, किन्तु आज के क्रम में दोहा, चौबोला, दौड़, बहरतबील, कव्वाली, गज़ल, दादरा, ड्रामा, थियेटर, शकिस्ता, गाना, मांड, भजन, आल्हा शामिल हैं। कानपुरी नौटंकी में 'डेढ़ तुकी' नामक छन्द भी कहीं-कहीं गाया जाता है। दोनों शैलियों की नौटंकी गायन-पद्धति में गायकी के वजन का अन्तर होता है।

ऊपर के अधिकांश छन्दों का प्रयोग चूंकि ख्याल गायकी में हो चुका है तथा नौटंकी के सभी आलेखों में भी इन्हीं छन्दों का प्रयोग देखा जा सकता है। अतः नौटंकी को ख्याल गायकी की प्रायोगिक लोक संगीत नाटक की धारा स्वीकार करने का हर प्रमाण सामने है।

जिज्ञासु पाठकों के लिये आवश्यक है कि अनेक नौटंकियों के आलेखों में प्रयुक्त होने वाले छन्दों की भी पहचान कर लें। इनका रूप इस प्रकार है :-

(नथाराम कृत नौटंकी का आरंभिक मंगलाचरण)

रंगा – *अलख अमल अज अगोचर, अगम अनादि अनन्त।*
(दोहा) अजर अमर अशरण शरण, त्राहि त्राहि भगवन्त।

चौबोला – त्राहि त्राहि भगवन्त, वारिजा कन्त सन्त सुखराशी।
विभुं ब्रह्म स्वच्छन्द, स्वयं सच्चिदानन्द अविनाशी।
स्वयं विधाता स्वयं विष्णु, हौ स्वयं शंभु कैलासी।
त्रिगुण त्रिविक्रम, त्रिदिशालयपति त्रिदेश त्रिलोक प्रकाशी।

दौड़ – निरंतर घट–घट वासी, स्वयं सर्वत्र विलासी,
इन्द्र शरणगति स्वामी,
विश्वाधर विष्णु नारायण, नमो नमामि नमामी।

(श्री कृष्ण कृत नौटंकी 'लंका कांड' में अंगद–रावण संवाद)

अंगद – *जादूगर भी बदन भर के टुकड़े करें, वीर लेकिन जगत में कहाता*
(बहरतबील) नहीं।
अपने मुंह करता अपनी बड़ाई है तू, शर्म खाता नहीं, शर्म खाता नहीं।
सद्गती चाहता है जो लंकापति, तो वचन क्यों मेरे ध्यान लाता नहीं।
देके तू राम को मां जनक नन्दिनी, यश कमल क्यों जगत में खिलाता नहीं।

(त्रिमोहन लाल कृत नौटंकी 'औरत का प्यार' का एक दृश्य)

(फरीदा गवर्नर जलाल का हाथ छुड़ा कर भागती है)

जलाल : जाबिर जल्दी जाओ और उस जिद्दी को पकड़ कर ले आओ।
(ड्रामा)

नथाराम कृत नौटंकी 'हरिश्चन्द्र' में तवायफ पंडित से कहती है

(ड्रामा अथवा थियेटर का दूसरा रूप)।

तवायफ : *सौदा हुआ इस नाजनी का पेशतर मुझे, महाराज कुछ भी है खबर*
(थियेटर) बसंत की तुझे।

पंडित – *सौदा हुआ है जिससे तेरा उससे बात कर, तकरार मती मालजादी*
मेरे साथ कर।

त्रिमोहन लाल कृत नौटंकी 'औरत का प्यार' में अज़ीज जेल जाते हुए अपनी बीबी फरीदा से कहता है :-

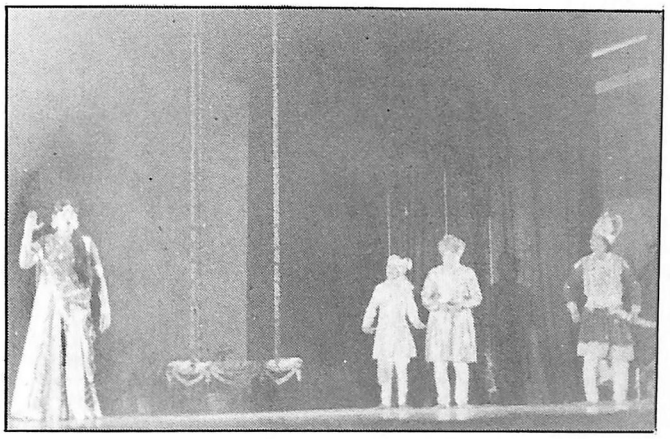

अज़ीज : *सौ बार ज़िन्दगी अगर जानमन पाऊं।*
(लावनी) हर बार खुशी से तुझ पर भेंट चढ़ाऊं।
क्या रही मुझे समझाय तू मेरी इज्ज़त।
इस क़दर मेरे दुश्मन के आगे ज़िल्लत।
इस तरह ज़िन्दगी पर है मेरी लानत।
जो जिऊं देख कर तेरे हुस्न की दौलत।
मरना है आखिर इसी तरह मर जाऊं।
हर बार खुशी से तुझ पर भेंट चढ़ाऊं।

(नियाज़ के महल में फरीदा दुःख में डूब कर गाती है)

फरीदा : *दिल ये ज़ोरो जफा का निशाना हुआ।*
(कव्वाली) दर्द फुरकत में जान गवाना हुआ।
गर न आना था तो कहके जाते चले,
मुझसे झूठा सनम क्यों बहाना हुआ।

नथाराम कृत नौटंकी 'हरिश्चन्द्र' में तारा मृत बेटे रोहित का मरघट–कर चुकाते हुए बिलखती है

छन्द : तारा ने साड़ी फार कर, मरघट का कर पूरा किया।
करके कड़ा दिल, उठा रोहित सुत को ले गोदी लिया।
अर्धी से खोली लाश पुनि गंगा के तट पर जाय के।
बेटा की सूरत देखि रही नैनों से नीर बहाय के।

श्री कृष्ण कृत नौटंकी 'लंकादहन' में रावण–पुत्र नारांतक अपनी पत्नी से कहता है।

नारांतक : *जूझे हैं चचा कुंभकरन, सुन ले ध्यान धर,*
(डेढ़तुकी) रणभूमि के अन्दर। घननाद भ्रात भी गया, कर स्वर्ग का सफर।

आल्हा : नारांतक की कई एक रानी थी, सुनो सुजन चितधार।
विन्दुमती के साथ हुई सब, वो भी चलने को तइयार।
ले कर सबको साथ नारांतक मारू डंका दिया बजाय।
देर नहीं की, सहित सैन के लंका नगरी पहुंचा जाय।

देख प्रबल दल नारांतक का, फौरन सीतापति रघुवीर।
कहने ऐसे लगे विभीषन को बुलवा कर अपने तीर।

(युद्ध करने को आकुल विभीषण–पुत्र तरुण सेन जाग कर पत्नी से कहता है)

तरुणसेन : *मृगनयन, शशि बदन प्राण प्यारी प्रिया।*
(ग़ज़ल) फीकी मुख–छवि हुई क्यों तुम्हारी प्रिया।
आई महलों में अंधेरी रात्रि में ऐ भामिनी।
होता मालूम तू सताई काम की है कामिनी।
बात बतला दे तू दिल की सारी प्रिया।

उक्त छन्दों के उधृत अंश ही अनेक शब्द योजनाओं का ताना–बाना धारण कर अनेक कथानकों को जन्म देते हैं जिन्हें विविध रागों और धुनों से प्राणवान बनाकर रसोत्पत्ति की जाती है। अब आईये, इनके रूपाकंन, वेश–विन्यास तथा मंचनिर्माण पर विचार करें।

रूपांकन

रूपांकन की पुरानी परिपाटी के अनुसार, कलाकार अपने चेहरे पर, क्रीम पाउडर के स्थान पर मुर्दाशंख का लेप लगाया करते थे। काजल तथा माचिस की तीली बुझा कर डाढ़ी मूंछ को आकार देने का रिवाज़ था। हाथों तथा पैरों पर लाली दौड़ाने के लिये लाल रंग का प्रयोग किया जाता था। खड़िया तथा प्यौरइय्या का प्रयोग रंगों को हल्का करने के लिये तथा अबरक का महीन चूर्ण रूपांकन को दमकाने के लिये किया जाता था। पचपन–साठ वर्ष पूर्व रूपांकन की यह पद्धति अधिकांश लोक नाट्यों के कलाकारों में प्रचलित थी।

फिर जमाना आया रेडीमेड पेन्ट या जिंक आक्साइड, प्योरइय्या, पोस्टर रेड और ग्लैसरीन से बनाये पेन्ट का। लिपिस्टिक का प्रयोग ओठों पर, आँखों और भौहों को कमान जैसा रूप देने के लिये आई ब्रो पेन्सिल और काजल प्रयोग होने लगा। चेहरे पर दमक लाने के लिये अबरक की पोटली का प्रयोग आज भी होता है। फिल्मी रूपांकन के प्रभाव से आज का नौटंकी कलाकार भी नहीं बच पाया। रूज तथा इसके समान जमाई हुई अनेक रंगों की केक्स तथा फेस पेन्ट के अनेक विदेशी ट्यूब्स आज की महिला कलाकारों की रुचि की प्रमुख चाहत बन गये हैं।

देहाती प्रदर्शनों के लिये तो पुरानी पद्धति से ही पुरुष वर्ग अपना रूपांकन करते हैं क्योंकि रूपांकन की बारीकियों को समझने और उस पर बहस करने वाले चूंकि देहाती क्षेत्र में कम होते हैं। अतः वहाँ देशी साधनों से ही काम चल जाता है लेकिन शहरी प्रदर्शनों में नौटंकी का हर कलाकार रूपांकन से लेकर वेश धारण करने तक सतर्कऔर सावधान रहता है।

पुरुष पात्र दाढ़ी मूछों को रूप देने के लिये काली, भूरी, सफेद तथा मिली जुली क्रेब को स्प्रिट गम के साथ काम में लाते हैं।

वेश विन्यास

पहले की प्रस्तुतियों में एक कलाकार कई–कई भूमिकाओं को अपने वेश में थोड़ा परिवर्तन करके निभा लेता था। प्रमुख पात्रों को छोड़कर, छोटी–छोटी भूमिका निभाने वाले पात्र इस काम को बड़ी खूबी से कर लेते थे। वेश बदलने के लिये उन्हें किसी आड़ की जरूरत नहीं होती थी। सिर पर अंगौछा बांधा और हाथ में लाठी ले ली – चौकीदार बन गये। कंधे पर अंगौछा डाला घरेलू नौकर का संवाद बोलने लगे। मुंह पर अंगौछा लपेट लिया तो डकैत का अभिनय करने लगे। इस प्रकार किसी दल की कम संख्या के पात्र बड़ी संख्या वाले नाटक के पात्रों का कुशल समाधान स्वयं बन जाते थे।

पुरुष पात्र

गोटे, जरी और सलमें–सितारे जड़े लम्बे कोट, पीछे टंका मखमली या साटन का रोब। हिन्दू, मुगल, राजस्थान तथा मराठा शासकों की वे पगड़ियाँ जिन्हें पुराने चित्रों से पहचान कर बनाया जाता है। इन्हें कथानक का नायक राजा या बादशाह धारण करके जब मंच पर आता है, तब दर्शक समुदाय सरलता से अनुमान कर लेता है कि नौटंकी किसके युग से जुड़ी है। मंत्री का पहनावा राजा के पहनावे से हल्का होता है। कपड़े का चुनाव करते समय इसका विशेष ध्यान रखा जाता है। इसी प्रकार सेठ–साहूकारों की पोशाक सामान्य पात्रों की पोशाकों से कीमती होती है। सामान्य पात्र तो साधारण कुर्तों अथवा बगल बंडियों को पहन कर ही अपना रूप संवार लेते हैं। चूड़ीदार पयजामा मुगल और राजस्थानी कथानकों के पात्र, दोहरी लांग की धोती मराठा शासन के पात्र तथा सूती और रेशमी धोतियाँ हिन्दू शासन तथा पौराणिक कथानकों के पात्र धारण करते हैं। युद्धरत सैनिकों की वेश–भूषा में ढाल तलवार के साथ कलाइयों, बाजुओं, पैरों और वक्ष पर कवच का प्रयोग किया जाता है। शिरस्त्राण पर विदेशियों और भारतीय सेनानायकों की पहचान के लिये चिन्ह बनाये जाते हैं जैसे यूनानी और भारतीय सेनानायकों की भिन्नता लिये शिरस्त्राण।

लाठी, बल्लम, तलवार, खड्ग, क्रिच, डंडे आदि चौकीदारों, सिपाहियों, देहातियों, गुंडों, अंधों तथा वृद्धों की भूमिकाओं को स्थापित करने के काम में आते हैं। इकतारा जोगी की भूमिका का निर्वाह करने में प्रयुक्त होता है।

रुद्राक्ष, तुलसी, मोती अथवा नकली रत्नों की चमकदार मालायें, अंगूठियाँ, त्रिशूल, कमंडल, मृगछाला, सिर की जटायें, कान के बाले, नाक की छोटे–बड़े आकार की नथनियाँ, बोरले, मुस्लिम काल के आभूषण, विभिन्न आकार के मुकुट, बाजूबन्द, कलाई की चूड़ियाँ, पाँचों उगलियों में पहना जाने वाला रत्न–हत्था, कुंडल, पैरों के कड़े, पैजनियाँ तथा सिर और चोटी के आभूषण किसी भी काल के पुरुष तथा महिला को, उसकी पात्रता के अनुरूप अलंकृत कर सकते हैं। निदेशक अपनी कल्पना के पात्र को इन्हीं के चुनाव से अलंकृत करता और रूप देता है। देहाती पात्रों में पुरुष ऊंची धोती बांधता है और महिलायें रंग–बिरंगी बूटेदार छींट का लहंगा तथा पारदर्शी ओढ़नी का प्रयोग करती हैं। इनके आभूषण– हंसली, कमर की तगड़ी, हाथों में चांदी के से लगने वाले मोटे कड़े, पैरों में बजनी झांझे, उंगलियों में चांदी की अंगूठियां, छोटी या बड़ी नथ, कानों में बाले या झुमके आदि। रूपांकन, वेशविन्यास तथा अलंकरण के पक्ष पर यदि सूक्ष्मता से विचार किया जाय तो इनके इस पक्ष का जुड़ाव संस्कृत के पुराने नाटकों की रूप सज्जा और वेशविन्यास पक्ष से अवश्य है।

नौटंकी के मान्य वाद्य तथा मंच निर्माण

नौटंकी की प्रस्तुति के तीन प्रमुख वाद्य हैं– ज़ील सहित नक्कारा, ढोलक तथा हारमोनियम।

हारमोनियम से पूर्व स्वर–संगत का प्रमुख वाद्य सारंगी थी। अब आइये इसकी मंच रचना पर विचार करें।

लोक संगीत नाटक को मुक्ता काशी मंच की आवश्यकता होती है, क्योंकि उसके अपने दर्शक, समाज के सामान्य वर्ग से जुड़े होते हैं जो अपने खड़े होने की दिशा स्वयं खोजते हैं। वे कहाँ और कैसे बैठेंगे यह भी वह स्वयं ही तय करते हैं। इसलिये इसे चकोर रूप दिया गया। पहले संगतकार वादक सामने से पीछे बैठते थे। मंच के तीन तरफ अंग्रेजी अक्षर यू के आकार में दर्शक रातभर के लिये जमते थे। कुछ विशिष्ट अतिथियों के लिये कुर्सियाँ डाली जाती थीं। कथ्य गायक कलाकार को तीनों तरफ घूम–घूम कर अपने कथन को दोहराना पड़ता था। अतः सम्पूर्ण कथानक रातभर में खत्म होता था। अन्त में 'अटल छत्र की जय' बोल कर नौटंकी समाप्ति की घोषणा कर दी जाती थी।

इसके बाद इलेक्ट्रानिक युग का आरम्भ हुआ। फलतः जिन कलाकारों को ऊंची आवाज में टेर लगा–लगाकर, मीलों दूर के दर्शक को बुलाना पड़ता था, माइक्रोफोन के प्रयोग से उस थकावट से मुक्ति मिल गयी। साजिन्दे, अब मंच के अगले बायें किनारे पर बैठने लगे तथा नौटंकी के गायक कलाकार को केवल एक बार अपना कथ्य गायन करने की आज़ादी मिल गयी। सम्पूर्ण कथानक को अब डेढ़ से दो ढाई घंटे के बीच प्रस्तुत करने में आसानी हो गयी।

नौटंकी क्षेत्र में महिला पात्रों का प्रवेश

१९४० ई. तक लोक नाट्यों तथा नाटकों में पुरुष ही महिलाओं की भूमिका का निर्वाह किया करते थे। इस नियम को गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा बंगाल के जात्रा मंच तक माना जाता था। इसके बाद व्यवसायिक स्पर्धा के कारण इस नियम में विस्फोटक रूप से बदलाव आ गया। ठठिया गाँव से सबसे पहले कृष्णा बाई का आगमन हुआ, इसके कुछ महीनों बाद गुलाब बाई त्रिमोहन लाल की पार्टी में शामिल हो गई।

कानपुरी नौटंकी की स्थापना से पूर्व की परिस्थितियाँ

पूर्व में जैसा संकेत किया जा चुका है कि अनेक प्रान्तों में लोक नाट्यों की स्थापना ख्याली अखाड़ों के खलीफाओं द्वारा की गयी। कानपुरी नौटंकी के पूर्व का वातावरण उत्पन्न करने का श्रेय भी यहाँ के एक ख्याली खलीफा 'बन्दी' खलीफा को है जो अपने जीवन काल में रास, सांग सपेड़ा तथा हाथरसी नौटंकी दलों को आमंत्रित कर आयोजन कराया करते थे। तब कानपुर की आबादी लाख डेढ लाख से ज्यादा नहीं थी। मुहल्ले के रईसों और समाज के सामान्य वर्गों में आपसी तालमेल था। सावन में मन्दिरों में श्रृंगार किये जाते थे। उन्हीं में ऐसे लोक नाट्यों का चौराहों और मुहल्लों के बीच के मैदानों में बड़े उत्साह के साथ आयोजन किया जाता था। सच्चाई तो यह है कि लोक नाट्य नौटंकी के स्वरूप का पहला परिचय हाथरसी नौटंकी के माध्यम से हुआ। इसके आरंभिक प्रदर्शनों तथा इसे नया रूप देने का श्रेय भी इसी शैली के कलाकारों को है। कानपुरी नौटंकी के प्रवर्तक स्व. श्री कृष्ण मेहरोत्रा को भी हाथरसी नौटंकी से ही पहली प्रेरणा मिली थी।

कानपुरी नौटंकी के प्रवर्तक श्री कृष्ण पहलवान

श्री कृष्ण मेहरोत्रा उर्फ श्री कृष्ण पहलवान का जन्म १२ दिसम्बर, १८९१ ई. को 'हड़हा' ग्राम जिला उन्नाव में हुआ था। इसे संयोग ही कहा जायेगा कि इसी गाँव में ही रीति कालीन काव्य के अन्तिम ज्योर्तिस्तंभ सुकवि सम्राट गया प्रसाद शुक्ल 'सनेहीं' जी ने भी जन्म लिया था। श्री कृष्ण जी उनका आजीवन सम्मान करते रहे। दोनों की शिक्षा मिडिल तक हुयी थी।

१९११ ई. में कानपुर में ख्याल बाजी का दौर चरम सीमा पर था। हर मंगलवार को समलू बाबा की मठिया कोपरगंज में रातभर ख्याल का दंगल जमा करता था।

आर्य समाज से प्रभावित होकर १६ वर्ष की आयु में श्री कृष्ण ने पहली नौटंकी 'हकीकतराय' लिखी। १९१२ ई. में 'चंचला कुमारी', 'महारानी पद्मिनी' तथा 'छत्रपति शिवाजी' नौटंकी की रचना की, जिसका प्रकाशन भी उन्होंने स्वयं किया।

गणेश शंकर विद्यार्थी जी के सम्पर्क में आने के बाद उन्होंने जलियां वाला बाग की रक्त गाथा को 'खूने नाहक' नौटंकी में व्यक्त किया जिसे बैकुंठ टाकीज (बाद में कैपिटल टाकीज नाम रखा गया) में पहली बार टिकट लगा कर 'शो' किया। 'खूने नाहक' का दूसरा प्रदर्शन नजीबाबाद (बिजनौर) में किया। इसके बाद 'आंख का जादू' नौटंकी का बरेली में २७ दिनों तक प्रदर्शन हुआ।

१९२९ ई. में पहली बार उनकी कम्पनी करांची गयी। खुदादोस्त, गुलबदन तथा बीरमती तमाशों ने वहाँ बड़ी शोहरत हासिल की। इसके बाद कई वर्षों तक करांची जाते रहे। मोहर्रम का महीना छोड़ शेष ग्यारह महीनों तक रोज टिकट पर तमाशे होते थे। इस समय तक इनकी १२५ नौटंकी की पुस्तकें छप चुकी थीं।

१९३७ में कम्पनी ग्वालियर की नुमाइश में गयी। धौलपुर में भी कम्पनी ने शोहरत हासिल की। इस समय तक नाटकों और नौटंकियों में अभिनेत्रियों का आना शुरू हो गया था। श्री कृष्ण की नौटंकी के मंच पर लड़के ही जनाना पार्ट करते थे। बाद में, इस व्यवसाय की बागडोर अपने छोटे भाई श्री राम मेहरोत्रा के हाथों सौंपकर वे पुस्तकों के प्रकाशन से जुड़ गये। पुस्तकों के लिखने, छापने और बेचने के कार्य से स्व. श्री कृष्णजी अन्त तक जुड़े रहे।

सेहत अल्फाजी, अनुशासन और राष्ट्र के प्रति निष्ठापूर्वक समर्पण की भावना रखने वाले श्री कृष्ण पहलवान, दबंग होने के साथ ही विनम्र और मृदुल स्वभाव के थे। उन्होंने अपने जीवन–काल में ३०० नौटंकियों की रचना की जिनकी प्रतियाँ करोड़ों की तादाद् में बिक चुकी हैं। २२ फरवरी, १९६८ को तत्कालीन राष्ट्रपति डा. जाकिर हुसैन के हाथों श्री कृष्ण पहलवान को 'फेलोशिप' के सम्मान से सम्मानित किया गया। नौटंकी जगत का यह पहला सम्मान उन्हें अपने जीवन–काल में मिल गया। यह कानपुर के लिये गौरव की बात है।

■

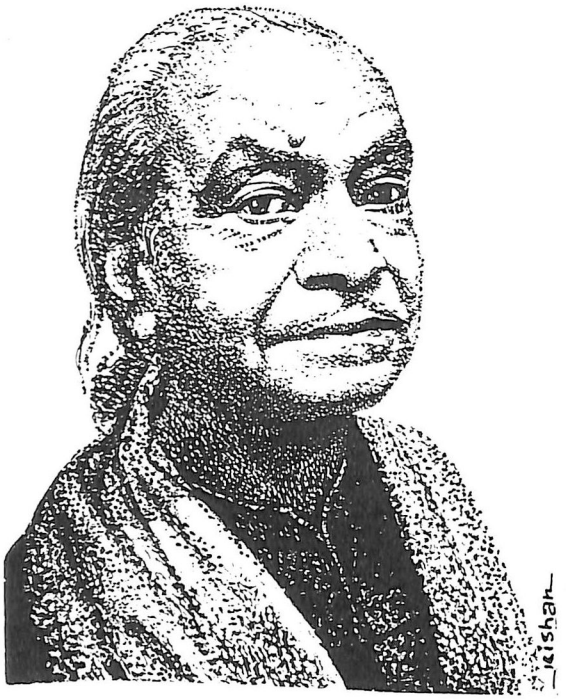

लेखक से परिचय

प्रस्तुत 'नौटंकी कला' पुस्तक के लेखक ७१ वर्षीय कलाविद्, साहित्यकार, नाटककार, पत्रकार तथा मूर्तिकार पं. सिद्धेश्वर अवस्थी प्रदेश में सांस्कृतिक पत्रकारिता के जनक हैं। रंगीन छायानाटक के प्रथम प्रस्तोता के रूप में आपने अनेक महत्वपूर्ण प्रस्तुतियाँ की हैं। लगभग २०० नाटकों का निर्देशन किया तथा नारियल पर अनेक भावात्मक आकृतियाँ उकेर कर अपनी अपार प्रतिभा का परिचय दिया है।

कवि के रूप में आपने विलक्षण छन्दों की रचना की है। 'नीलकंठ' उपन्यास की साहित्य जगत में मुक्त कंठ से सराहना हुई है।

नौटंकी विधा के क्षेत्र में श्री अवस्थी के अन्वेषण अनूठे हैं। नौटंकी के उन्नयन, विकास एवं प्रसार हेतु आपने कानपुर में 'नौटंकी प्रशिक्षण केन्द्र' की संस्थापना की। नौटंकी छन्दों में रचे-बसे तथा आधुनिक तराश में निखरे पंडित जी द्वारा रचित ५ आपेरा या संगीत नाटिकायें 'कथा नन्दन की', 'सल्तनत के दावेदार', 'इडिपस', 'अनारकली' तथा प्रसाद कृत 'चन्द्रगुप्त' की पूरे देश के अखबारों तथा दर्शकों द्वारा सराहना की गई।

आपकी उपलब्धियों को सम्मानित करते हुये वर्ष १९८९ में 'नाट्य लेखन' पर आपको उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार से अंलकृत किया गया है।